हमारे आधुनिक भारतीय चिंतक : एक समय दृष्टि

डॉ. भगवानदास अहिरवार
प्राचार्य
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश -

हम जिन भारतीय सामाजिक, राजनीतिक विचारकों पर विमर्श की प्रक्रिया आरंभ कर रहे हैं, वे अब हमारे गौरवशाली चिंतन के इतिहास का हिस्सा हैं। इतिहास के बारे में कहा जाता है कि कुछ के लिए इतिहास साहित्य है, तो कुछ के लिए तथ्यों का प्रस्तुतिकरण, कुछ के लिए यह वर्तमान की व्याख्या है, तो कुछ के लिए भूतकाल की सुखद अनुभूति। हम जिन चिन्तकों की बात कर रहे हैं, उनके बारे में भी इतिहास एकमत नहीं है, विचारों की दुनिया में विद्वान एकमत नहीं हैं, सबके अपने-अपने मत हैं। कुछ विद्वानों की किन्हीं विचारकों के प्रति एक ओर अंधश्रद्धा हैं, वहीं दूसरे विचारकों के प्रति पूर्वाग्रह उनके चिंतन में झलकते हैं। चिंतन के इस परिप्रेक्ष्य में हमें न तो किसी विचारक के प्रति, उनके विचारों के प्रति अंधश्रद्धावान होना होगा, न ही पूर्वाग्रहों से ग्रसित हमारे ये सामाजिक, राजनीतिक चिंतक, हमारे भारत की माटी की धरोहर हैं। अतः हमें उनके विचारों को उनके विचारों के परिप्रेक्ष्य को समझना होगा।

मुख्य शब्द - भारतीय चिंतन, पुर्नजागरण, मध्यकालीन, समतामूलक, लोकतांत्रिक, गाँधीवाद।

भारतीय ज्ञान एवं चिंतन की परम्परा प्राचीन है, ऐसा कहा जाता है कि समाज विज्ञानों की दुनिया में जिस चिंतन की शुरूआत यूनान से हुई, उसके पूर्व से ही भारत में चिंतन एवं बौद्धिक विमर्श की निझर्णी बह रही थी। यद्यपि हमारे इस प्राचीन चिंतन की सार्थकता के संबंध में कई प्रश्न हैं? जैसे कि क्या यह हमारा प्राचीन चिंतन सर्वव्यापी एवं सर्वकालिक था? अर्थात क्या चिंतन की इस धारा में समाज के सभी वर्ग समानरूप से प्रवाहित हो रहे थे? यदि ऐसा था तव उस समय के समाज में सामाजिक विद्रूपताएँ क्यों थीं? हमारे यहाँ के जग ज़ाहिर नीतिशास्त्र एवं दण्डशास्त्र में जाति के आधार पर दण्ड की व्यवस्था क्यों थी? अर्थात एक ही अपराध के लिए अलग-अलग जातियों के लिए अलग-अलग राजकीय दण्ड के प्रावधान क्यों थे? स्वाभाविक है कि किसी घोर अपराध के लिए जाति के आधार पर जिनके पूर्वजों को दण्ड मुक्त किया गया अथवा सांकेतिक दण्ड दिया गया, उन्हें यह नीति शास्त्र एवं उस पर आधारित दण्ड शास्त्र गौरवशाली विरासत है, इसके विपरीत इन्हीं अपराधों के लिए जिनके पूर्वजों का प्राण हरण हुआ उसके लिए यह दण्डशास्त्र अभिशाप है। दण्ड का सामाजिक आधार होना, ज्ञान चिंतन एवं संस्कृति का सामाजिक प्रतिविम्वत स्वरूप ऐसे कारण हैं, जिनकी वजह से इस मुद्दे पर समग्र रूप से भारतीय समाज में आम सहमति कभी नहीं वन सकी।

1784 में कलकत्ता में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के कुछ प्रोफेसरों द्वारा 'एशियाटिक सोसाइटी' नामक संस्था की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य प्राचीन भारतीय सभ्यता, धर्म एवं संस्कृति का अध्ययन कर इसके बारे में विश्व

को अवगत कराना था। पश्चिम के विद्वान आचार्यों ने जिनमें डर्निंग ब्लूमफील्ड, एवं मैक्समूलर प्रमुख थे, ने भारतीय ज्ञान एवं चिंतन में संदेहात्मक, आदर्शवाद, अव्यवहारिक, रहस्यवाद एवं काल्पनिक परलौकिकवाद पाया। यद्यपि उनकी इस धारणा से कई भारतीय विद्वानों में असहमति थी।

उन्नीसहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध, बल्कि 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में धार्मिक पुनर्जागरण की शुरूआत हुई, जिसका स्त्रोत यूरोपीय पुनर्जागरण था। भारत में प्रारंभ हुआ यह धार्मिक पुनर्जागरण मनुष्य की बौद्धिक एवं कलात्मक ऊर्जा की वह सुन्दर अभिव्यक्ति थी, जिसने भारत के भारतीय समाज को अंधकारमय मध्यकालीन युग से निकालकर आधुनिक कालीन प्रकाशमय युग में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त किया। रूढ़ियों एवं अंध विश्वासों पर आधारित परम्पराओं का क्षरण हुआ। धर्म की सत्ता धर्म क्षेत्रों तक सीमित हुई, समाज एवं शासन उसके प्रभाव से आंशिक रूप से मुक्त हुआ। धर्म की सत्ता के न्यूनतम होते इस प्रभाव ने सामंतवाद के पतन का मार्ग तैयार किया, समाज में बौद्धिक विमर्श की शुरूआत हुई। धर्म सापेक्ष, विवेक सम्मत वातावरण तैयार हुआ, जिसने समाज व राष्ट्र को धर्म भीरूता एवं अंधविश्वास तथा कट्टरता के खतरों के प्रति आगाह किया।

इसी उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुए इस धार्मिक पुनर्जागरण के साथ-साथ वैज्ञानिक आविष्कारों की शुरूआत नए-नए भौगोलिक क्षेत्रों, नए जलीय व थलीय मार्गों की खोज एवं यूरोपीय देशों के सम्पर्क आदि ऐसे कारण थे, जिन्होंने समाज में आधारभूत बदलाव की रूपरेखा प्रशस्त की। भारतीय सम्पन्न वर्गों का एक वर्ग अपनी शिक्षा-दीक्षा के लिए यूरोप की ओर उन्मुख हुआ। यूरोपीय विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में इस भारतीय विद्यार्थी वर्ग ने रूसो मान्टैस्क्यू, बाल्टेयर, मैक्सिम गोर्की, गैरीबाल्डी, मैजिनी इत्यादि विद्वानों की रचनाओं एवं उनके द्वारा सृजित साहित्य का अध्ययन किया। ये ऐसे यूरोपीय विद्वान थे, जिन्होंने अपने साहित्य द्वारा न केवल तात्कालिक यूरोपीय समाज में फैले सामाजिक शोषण, दमन, उत्पीड़न एवं अन्याय को उजागर किया, बल्कि आम जनता की दरिद्रता, विशेष रूप से विभिन्न वर्गों की दुर्दशा की ओर समकालीन, समाज एवं राजसत्ताओं का ध्यान आकर्षित किया था। इन विद्वानों के इस साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप पश्चिम गए, उस समय के भारतीय विद्यार्थियों की भावनाओं में ज्वार आने लगा, वे अपने भारतीय समाज को योरोप में आए सामाजिक बदलाव के अनुरूप बदलने की सोचने लगे। इस प्रकार यह भारतीय विद्यार्थी वर्ग पश्चिमी साहित्य के अनुशीलन एवं वहां के समाजों में हुए बदलावों की अनुभूति महसूस करते हुए इन्हीं सामाजिक विचारों एवं मूल्यों को लेकर स्वदेश लौटा। स्वदेश लौटते ही इस बौद्धिक वर्ग ने भारतीय समाज में भी पश्चिम के समतामूलक मूल्यों के अनुरूप बुनियादी बदलाव लाने के लिए बौद्धिक विमर्श प्रारंभ किया। केवल बौद्धिक चिंतन एवं विमर्श ही प्रारंभ नहीं हुआ, बल्कि आधारभूत सामाजिक, राजनीतिक बदलाव हेतु आंदोलनों का भी सूत्रपात हुआ।

उधर औद्योगिक क्रांति की शुरूआत ने कलकत्ता व अन्य प्राकृतिक सम्पदा से प्रचुर स्थानों पर कल कारखानों एवं उद्योगों की स्थापना की राह तैयार की। एक ओर भारतीय समाज में फैली दरिद्रता एवं बेबसी ने भारतीय संख्या में श्रमिकों को इस कारखानों की ओर अपनी आजीविका हेतु उन्मुख किया, वहीं दूसरी ओर पूँजीपतियों की अधिक मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति ने उन्हें श्रमिकों के श्रम के साथ खेलने का भरपूर मौका दिया। कालांतर में लोक कल्याण के उद्देश्यों के अनुरूप इस मेहनतकश वर्ग को मिले राजकीय अनुरक्षण के फलस्वरूप उनमें नई चेतना का संचार हुआ। परिणाम स्वरूप यह श्रमिक वर्ग अपनी माँगों को मनवाने के लिए उद्योगों के मालिकों से टक्कर लेने

की स्थिति में आ गया। शहरी एवं औद्योगिक क्षेत्रों में समाज दो वर्गों में बँट गया। प्रथम पूँजीपति वर्ग जो कल कारखानों एवं उद्योगों का मालिक था, प्रबंधक था और दूसरा मेहनतकश सर्वहारा वर्ग। इनके संघर्ष के परिणाम स्वरूप समाज में एक नई विचारधारा का उद्भव हुआ, वह थी समाजवादी विचारधारा, जिसका आधार था - लोकतांत्रिक निर्वाचन प्रक्रिया। अतः यह विचारधारा अपने नए स्वरूप लोकतांत्रिक समाजवाद के रूप में अस्तित्व में आई।

उदाहरण के रूप में भारत के सामाजिक, राजनीतिक चिन्तकों में सबसे बड़ा नाम महात्मा गाँधी का है। महात्मा गाँधी अपने जीवनकाल में अपने विरोधियों की आलोचनाओं से घिरे रहते थे तथा यथासंभव बौद्धिक एवं कर्म के स्तर पर इन आलोचनाओं को सहर्ष स्वीकार कर उनका जवाब भी देते थे, लेकिन उनकी मृत्यु के बाद गाँधीवादियों का एक ऐसा वर्ग सामने आया, जिसने गाँधी के संबंध में गाँधी के विचारों के संबंध में किसी तरह की समालोचना को पसंद नहीं किया। जब-जब गाँधीवाद के किन्हीं विचारों पर विमर्श एवं विश्लेषण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई, गाँधीवादियों के एक वर्ग ने इस विमर्श के विरूद्ध तीव्र और कहीं-कहीं उग्र प्रतिक्रिया व्यक्त की परिणाम स्वरूप गाँधीवाद का चिंतन का दुनिया में कभी निष्पक्ष विश्लेषण नहीं हो सका। इसी प्रकार कट्टर अम्बेडकरवादियों का एक वर्ग, जो कट्टर है एवं बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के प्रति केवल सतही ज्ञान रखता है, डॉ. अम्बेडकर को अपनी दुनिया में कैद कर रखना चाहता है। इस वर्ग ने बाबा साहब के वैज्ञानिक, तार्किक एवं उनके लोकतांत्रिक चिंतन पर अपनी कट्टरता एवं अंधविश्वास की चादर ढक रखी है, जिस कारण बाबा साहिब डॉ. अम्बेडकर के विचारों से भारत का आम जनमानस अभी भी वंचित है।

भारतीय, सामाजिक, राजनीतिक चिन्तकों एवं कार्यकर्ताओं में प्रथम नाम गोपाल बाल गंगाधर तिलक का लिया जाएगा। गोपाल बाल गंगाधर तिलक को यदि भारतीय स्वतंत्रता का जनक कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। तिलक वह भारतीय स्वतंत्रता सेनानी थे, जो भारतीय शासन व्यवस्था में सुधार एवं अँग्रेजी राज की समाप्ति हेतु अनुनय, विनय, प्रार्थना ज्ञापन इत्यादि में विश्वास न कर, ठोस कार्यक्रमों के माध्यम से आज़ादी की प्राप्ति के पक्षधर थे, लेकिन वहीं तिलक सामाजिक आज़ादी प्राप्ति के आंदोलनों के प्रति न केवल उदासीन थे, बल्कि वह कहीं-कहीं सामाजिक सुधारों, विशेष रूप से राजकीय संस्थाओं में अस्पृश्य एवं पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधित्व एवं सत्ता में भागेदारी के विचारों का विरोध करते नजर आते हैं। यही कारण है कि तिलक के संबंध में डॉ. अम्बेडकर को कहना पड़ा था कि, "यदि तिलक अस्पृश्य वर्ग में पैदा होते, तो स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, हम इसे लेकर रहेंगे" का नारा लगाने की बजाय यह नारा लगाते कि अस्पृश्यता मिटाना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, हम इसे मिटाकर रहेंगे। इसी प्रकार डॉ. अम्बेडकर द्वारा अस्पृश्य भाईयों से की गई वह अपील, जिसमें उन्होंने उनसे उन काम-धंधों को त्यागने की अपील की थी, जो उनकी मानवीय गरिमा के विरूद्ध थे, को लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र केसरी में प्रकाशित करने से इन्कार कर दिया था। यही नहीं चूँकि उस समय जन प्रसार का मात्र माध्यम अखबार ही थे। अतः डॉ. अम्बेडकर ने वंचितों शोषितों तक अपनी आवाज पहुँचाने के लिए जब अपने मूक नायक के प्रकाशन का विज्ञापन भी केसरी में देना चाहा। तिलक ने अपने केसरी मे उसे भी प्रकाशित करने से इन्कार कर दिया था।

इसी प्रकार हमें ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि महात्मा गाँधी एवं डॉ. अम्बेडकर के वैचारिक मतभेद जगज़ाहिर थे। 1930 में लन्दन में आयोजित प्रथम गोल मेज सम्मेलन, बगैर महात्मा गाँधी के सम्पन्न हुआ था। इस सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर का तर्क था कि सिक्ख एवं मुसलमानों की तरह दलित भी पृथक वर्ग है, चूँकि सिक्ख एवं

ISSN 2395-051X

मुसलमान दोनों सबल समुदाय हैं, जबकि दलित निर्बल। अतः उन्हें भी सत्ता में पृथक प्रतिनिधित्व प्राप्त होनी चाहिए और कांग्रेस को दलितों की ओर से ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करने का कोई अधिकार नहीं है। डॉ. अम्बेडकर के इन विचारों ने उस समय के भारत की राजनीतिक बिरादरी में हलचल मचा दी। अतः महात्मा गाँधी द्वारा दिए गए पत्र आमंत्रण पर गाँधी-अम्बेडकर की प्रथम मुलाकात 14 अगस्त 1931 को बम्बई के मालाबार स्थित मणिभवन में होती है। मुलाकाती वार्तालाप में गाँधी का प्रथम प्रश्न होता है कि डॉ. अम्बेडकर आप क्या चाहते हैं? डॉ. अम्बेडकर का उत्तर होता है - अस्पृश्यता से मुक्ति एवं मातृभूमि पर अपना अधिकार। डॉ. अम्बेडकर के इस उत्तर के संबंध में गाँधी का प्रति उत्तर होता है कि, "कॉंग्रेस ने अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए 20 लाख रूपए का कोष बनाया है और मातृभूमि आपकी है, आप इसकी सेवा कीजिए।" डॉ. अम्बेडकर गाँधी के समक्ष अपना मत रखते हैं कि 20 लाख रूपए के कोष जैसे सतही उपायों से अछूतों का भला नहीं होने वाला, यदि वास्तव में उनका भला करना है तो व्यवहारिक कदम उठाना पड़ेंगे। अम्बेडकर की दृष्टि में वह कदम थे, कॉंग्रेस की सदस्यता की अनिवार्य शर्त खादी धारण नहीं, अपितु अस्पृश्यता का त्याग अनिवार्य होनी चाहिए। इसके लिए सभी संभ्रांत कांग्रेसियों को दलितों को अपने रसोइए के रूप में रखना अनिवार्य होना चाहिए। दूसरा जहाँ तक मातृभूमि अपनी होने का सवाल है। इस पर अम्बेडकर का मत था कि जिस भूमि पर हमें कुत्तों बिल्लियों से तुच्छ माना जाता हो, कुत्तों, बिल्लियों, पशुओं को सार्वजनिक जलाशयों में जाने का हक हो, लेकिन हमें इन जलाशयों से पानी पीने का हक न हो, जहाँ हमारा कोई स्वामिमान न हो। वह हमारी मातृभूमि कैसे हो सकती है? चूँकि गाँधी-अम्बेडकर के विचारों में दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व के मुद्दे पर कोई सहमति नहीं बनती। अतः डॉ. अम्बेडकर गाँधी को अपनी स्पष्ट राय रखने के लिए धन्यवाद देते हुए विदा ले लेते हैं।

हमें यहाँ इस मुद्दे पर विचार करना होगा कि गाँधीवादी विचारों के संबंध में सर्वाधिक असहमतियाँ क्यों हैं? उत्तर स्पष्ट है कि प्रथम- महात्मा गाँधी की भाँति नेहरू, डॉ. अम्बेडकर, डॉ. राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, दीनदयाल उपाध्याय, विनोबा भावे, श्यामा प्रसाद मुखर्जी आदि सभी महापुरूषों के अपने-अपने विचार हैं, लेकिन विचारों की दुनिया में अम्बेडकरवाद नहीं है, लोहियावाद नहीं है, नेहरूवाद नहीं है, जयप्रकाश नारायणवाद नहीं है, दीनदयाल उपाध्यायवाद नहीं है, लेकिन गाँधी जी के विचारों को अवश्य गाँधवादियों ने गाँधीवाद का रूप दे रखा है, जबकि स्वयं गाँधी नहीं चाहते थे कि गाँधीवाद जैसा कोई वाद दुनिया में उनके जाने के बाद अस्तित्व में रहे। इसे उनके द्वारा साँवली सेवा संघ के सम्मुख 1936 में दिए गए भाषण से जाना जा सकता है। साँवली सेवा संघ के समक्ष अपने भाषण में गाँधीजी ने स्पष्ट रूप से कहा था कि, "मेरे विचारों को जिन्हें आप गाँधीवाद कहते हैं, कृपया गाँधीवाद न कहें, क्योंकि मैं अपने पीछे कोई वाद अथवा सम्प्रदाय छोड़कर नहीं जाना चाहता। मैं ऐसा दावा नहीं करता कि मैने किन्हीं सिद्धांतों अथवा मत को जन्म दिया है, मैंने तो जीवन की आधारभूत सच्चाईयों को अपने जीवन एवं उसकी समस्याओं पर लागू करने का प्रयत्न मात्र किया है,। मैंने जो मत बनाए हैं, जो निष्कर्ष निकाले हैं, वह अंतिम नहीं है, उनमें से मैं आगे परिवर्तन भी कर सकता हूँ। मेरे पास विश्व को सिखाने के लिए नया कुछ भी नहीं है। सत्य एवं अहिंसा उतने ही पुराने हैं, जितने पहाड़ एवं नदियाँ। मैंने तो इन्हें व्यापक अर्थों में लागू करने का प्रयत्न मात्र किया है।'

स्पष्ट है कि महात्मा गाँधी ने स्वयं गाँधीवाद जैसे किसी विचार को अस्वीकार किया है, वो यह भी नहीं चाहते थे कि उनकी मृत्यु के बाद गाँधीवाद अस्तित्व में रहे। वे किन्ही नए सिद्धांतों अथवा मत को जन्म देने का दावा भी नहीं करते, जबकि गाँधीवादी गाँधीवाद के अस्तित्व ने केवल कायम रखने, बल्कि वह इसे दिनों-दिन समृद्ध

करने को संकल्पित हैं। अतः गाँधीवाद से सहमति न रखने वाले विद्वानों का गाँधीवाद के प्रति असहमतियों का यही प्रमुख कारण है।

भारतीय राजनीति एवं समाज सुधार की दुनिया में डॉ. राम मनोहर लोहिया एवं लोक नायक बाबू जयप्रकाश नारायण की प्रविष्टि मार्क्सवाद विचारकों के रूप में होती है, लेकिन कालांतर में इन दोनों कर्मयोगियों की मार्क्सवाद के प्रमुख सिद्धांत वर्ग संघर्ष से आस्था उठ जाती है एवं दोनों गाँधीजी की अहिंसा के प्रति आकर्षित हो जाते है।

अपने-अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में डॉ. राम मनोहर लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण पूरी तरह से गाँधीवाद में रचे बसे नजर आते हैं, लेकिन यहाँ हमें स्मरण रखना होगा कि जयप्रकाश नारायण एवं डॉ लोहिया गाँधी के अस्पृश्यता उन्मूलन, अहिंसा, जैसे विचारों से अवश्य प्रभावित होकर गाँधीवादी हो जाते हैं, लेकिन गाँधीवादी होते हुए भी गाँधी जी के धर्मनिष्ठ विचारों, वर्ण व्यवस्था, जाति के अस्तित्व, राज्य, सेना, पुलिस संबंधी विचारों से अपनी दूरी बनाए रखते हैं।

इसी प्रकार हमें पं. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानवतावाद विचारों की भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमि एवं वर्तमान परिदृश्य में उपादेयता, नेहरू का लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति समर्पण व श्यामा प्रसाद मुखर्जी की कई राजनीतिक मुद्दों पर नेहरू से असहमतियाँ ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर अधिक चिंतन एवं विश्लेषण की आवश्यकता है।

निष्कर्ष यह कि हमारे चिंतन की दृष्टि एक शोधक की होनी चाहिए, एक विश्लेषक की होनी चाहिए। चिंतन के इस परिप्रेक्ष्य में हमें न तो किसी विचारक के प्रति, उनके विचारों के प्रति अंधश्रद्धावान होना होगा, न ही पूर्वाग्रहों से ग्रसित हमारे ये सामाजिक, राजनीतिक चिंतक, हमारे भारत की माटी की धरोहर हैं। अतः हमें उनके विचारों को उनके विचारों के परिप्रेक्ष्य को समझना होगा कि उन्होंने जो कहा है जो लिखा है वह किस संदर्भ में लिखा है अथवा कहा है, इसी संदर्भ एवं परिप्रेक्ष्य में हमें उनके विचारों को निष्पक्ष भाव से विश्लेषण कर उन्हें इस प्रकार पुर्नस्थापित करना होगा, ताकि न केवल विश्व समुदाय के मध्य इन विचारों का प्रचार-प्रसार हो, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तकों के रूप में इन्हें मान्यता मिल सके।

❖ ❖ ❖